
इकाई 5 असमानता : जाति और वर्ग

संरचना

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 सामाजिक-असमानता की धारणा
- 5.3 भारत में जातीय असमानता का स्वरूप
- 5.4 जाति : उपनिवेशी आधुनिकता का आविष्कार अथवा ब्राह्मणवादी परम्पराओं की गाथा
- 5.5 भारत में वर्ग असमानता का स्वरूप
- 5.6 जाति और वर्ग शासन तंत्र के अन्तर्सम्बन्ध
- 5.7 सामाजिक असमानताएँ, विकास और सहभागिता राजनीति
- 5.8 सारांश
- 5.9 अभ्यास

5.1 प्रस्तावना

भारत के संविधान में उल्लिखित प्रतिष्ठित नियम और सिद्धांतों के नियामक और लोकतांत्रिक स्तंभ भारत में उपनिवेशोत्तर राज्य की कार्यसूची में सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन अथवा उन्हें न्यूनतम करना शामिल है। 'कल्याणकारी' राज्य का उद्देश्य 'दलितों' के ऊपर थोपी गई सदियों पुरानी अयोग्यताओं को कम करके जाति मुक्त आधुनिक समाज का निर्माण तथा शिक्षा और जॉब मार्केट विशेष रूप से राज्य नौकरशाही तथा व हदाकार लोकक्षेत्र उपक्रमों में उनके लिए 'आरक्षण' व 'नियतांश (quotas)' का प्रावधान करके उनकी स्थिति सुधारने का प्रयास करना था। भारत का संविधान राज्य से अपेक्षा करता है कि वह सभी नागरिकों के साथ उनके जन्म, लिंग और धार्मिक विश्वास की ओर ध्यान दिये बिना समान बर्ताव करे। तथापि, सिद्धांतों को लागू करना और सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास सामाजिक गठन की जटिलताओं में उलझी हुई एक प्रक्रिया है। इसीलिए जाति, वर्ण और वर्ग के चुस्त पहलू अभी भी हमारे परिवार, आवासीय स्थलों और राजनीतिक संस्थाओं में व्याप्त हैं। इस इकाई में हमारा प्रयास सामाजिक असमानता के विभिन्न पहलुओं और भारत के उपनिवेशोत्तर राज्य में लोकतांत्रिक व्यवस्था और विकास की राजनीतिक व्यवस्था पर उनके प्रभाव पर चर्चा करना है।

5.2 सामाजिक-असमानता की धारणा

मानव समाज में उस सीमा तक बदलाव होते हैं जिस सीमा तक सामाजिक समूहों और व्यष्टियों की लाभ उठाने तक पहुँच में असमानता बनी रहती है। रूसो ने प्राकृतिक की लाभ उठाने तक पहुँच में असमानता बनी रहती है। रूसो ने प्राकृतिक और सामाजिक असमानता के बीच एक भिन्नता प्रस्तुत की। पहली स्थिति समाज के सदस्यों के बीच शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के असमान आबंटन से उभरती है। दूसरी स्थिति में, लोगों की धन अथवा आर्थिक संसाधनों, राजनीतिक सामर्थ्य और क्षमताओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। विकास के स्तर और समाज के ढाँचागत स्वरूप से समाज के मात्र संसाधनों

को ही प्रभावित नहीं करते हैं अपितु विभिन्न समूहों की इन संसाधनों तक पहुँच अलग-अलग होती है। सामाजिक समूहों की शक्तिशीलता भी अलग-अलग होती है तथा उसी प्रकार वे समाज से जुड़े हुए लाभ प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार, रूढ़िवादी परम्पराएँ, नियम, रीति रिवाज और कानून सर्वाधिक मानव समाजों में कतिपय समूहों और व्यवसायों की प्रतिष्ठा और प्रास्थिति को अधिक प्रभावित करते हैं। मानव वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों और राजनीतिविदों द्वारा सामाजिक असमानता के वर्णन और अभिव्यक्ति के लिए कुलीन तंत्र, स्तरीकरण वर्ग विभाजन प्रयुक्त की गई धारणाएँ हैं। मानव वैज्ञानिक आमतौर पर सामाजिक असमानता के संदर्भ में तीन प्रकार के समाजों की ओर इशारा करते हैं। इन्हें समतावादी, ओहदेदार और वर्ग समाजों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। समतावादी समाज समानता का व्यवहार करते हैं और किसी भी सामाजिक समूह को अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक संसाधन, शक्ति अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। ओहदेदार समाजों में धन अथवा सत्ता तक पहुँच असमान नहीं होती अपितु उनके सामाजिक समूह होते हैं जिनको अधिक सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। एक साक्षरतापूर्ण प्रजातीय समाज में सामाजिक ओहदेदारी प्रमुखों अथवा उसके गठबंधनों के नियम पर निर्भर करती है। विषय वर्ग समाजों में आर्थिक संसाधनों सत्ता और प्रास्थिति तक पहुँच और हकदारी असमान होती है।

कई उद्योग पूर्व क्षेत्रिक समाजों सामाजिक अवसरों और प्रास्थिति तक पहुँच जन्म की घटना से अवधारित होती थी। व्यष्टि की आरोपित भूमिका अथवा प्रास्थिति उसके नियंत्रण से बाहर घटकों जैसे जन्म, लिंग, आयु सम्बन्ध, रिश्तों और जाति के आधार पर जाती थी। मध्ययुगीन यूरोप की सम्पदाएँ अथवा आदेश असमान ओहदों पर बँटे हुए थे और यह ओहदातंत्र समाज की धार्मिक-नियामक व्यवस्था द्वारा विधिक तौर पर मान्यता प्राप्त और अनुमोदित था। भारतीय जाति प्रथा सामाजिक राज्यतंत्र का एक अन्य रूप थी। व्यष्टि की पेशेवर अथवा रोजगार सम्बन्धी भूमिका आधुनिक औद्योगिक और लोकतांत्रिक समाज में व्यष्टि के अपने प्रयास और योग्यता पर निर्भर होने लगी। इस नई प्राप्त भूमिका पर आधुनिकता के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जोर दिया गया और इसे लोकतांत्रिक आदर्श के समतुल्य देखा गया। इसमें एक प्रदत्त स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रयास, रुचि और उचित प्रतिस्पर्धात्मक व्यवहार अंतर्गुप्त था। समाज में कुलीन तंत्र से स्तरीकरण के सिद्धांत का अंतरण हुआ। समाजशास्त्रियों के अनुसार, जाति अथवा सम्पदाओं अथवा सामाजिक असमानताओं पर आधारित समाजों में प्रचलित कुलीन तंत्र को प्राकृतिक मानते हुए विधिसम्मत कर दिया गया। दूसरी तरफ, स्तरीकरण आधुनिक औद्योगिक समाजों का लक्षण है जिसमें असमानताएँ बनी रहती हैं परन्तु उन्हें प्राकृतिक अथवा दैवीय व्यवस्था का अंग नहीं माना जाता। सामाजिक बदलाव की इस प्रक्रिया में, समानता न तो समाप्त हुई और न कम हुई बल्कि इसका रूप बदल गया। अब वर्ग सीमाएँ सरन्ध्र और पारगम्य हैं, व्यष्टि की गतिशीलता संभव है और समाज की नियामक व्यवस्था औपचारिक समानता पर आधारित थी। तथापि, औद्योगिक समाज का एक विशाल क्षेत्र अभी भी मौजूद है जहाँ भूमिकाएँ पुरुष अथवा स्त्री, काला अथवा गोरा आदि के आधार पर आबंटित की जाती है।

जी. डी. बैरेमन का सुझाव है कि व्यक्तियों के 'विभेदन' जो एक सार्वभौमिक और प्राकृतिक घटना है, से असमानता अथवा मतभेदों के सामाजिक मूल्यांकन का उद्भव होता है। वह असमानता की व्यावहारिक अभिव्यक्ति को 'वर्चस्व' का नाम देता है तथा असमानता और वर्चस्व के संयोजन को सामाजिक-समानता मानता है। समतावादी समाजों में वर्चस्व और प्रास्थिति प्रायः परक्राम्य तथा प्रसंग से सम्बन्धित होती हैं जबकि ओहदेदार और असमतावादी समाजों में, असमानता को नियम मान लिया जाता है। वह प्रास्थितियों

के कुलीनतंत्र में सन्निहित है तथा इसे योग्यता के व्यक्तिगत मतभेदों से नहीं जोड़ा गया है। मार्क्सवादी आमतौर पर आर्थिक स्थिति और आर्थिक हकदारी तक पहुँच द्वारा यथापरिभाषित वर्ग विभाजन से सम्बन्धित शक्ति और प्रास्थिति का वर्गीकरण चाहते हैं। तथापि, वेवेरियन युगान्तर में, प्रास्थिति और सत्ता पूरी तरह आर्थिक विभाजन द्वारा विनियंत्रित नहीं है अथवा इनका आर्थिक हकदारियों पर नियंत्रण नहीं है। तथापि शब्द स्तरीकरण हमें उस भूगर्भीय आकृति की याद दिलाता है जो एक प्रकार के लम्बवत् स्तरीकरण, सामाजिक समूह के प्रबन्धन, अधिक प्रवाहशील और विषमता वाले सामाजिक संगठन को विशेष महत्त्व देता है। संघटकों के कई समूह एक विशेष सामाजिक गठन को प्रभावित करते हैं तथा यह कभी भी स्तरों/पतों का सामान्य लम्बवत् अथवा कुलीन तंत्रीय प्रबन्धन नहीं होता जैसे भू-पटल। परेटो, मोस्का और माइकल जैसे राजनीतिक विचारकों ने सत्ता को समाज में वास्तविक स्रोत के रूप में प्राथमिकता दी। उनके अनुसार, सत्ता ऐसी योग्यता है जो लोगों से वह कराती है जिसे वे करना नहीं चाहते और प्रतिष्ठित समूह इस सत्ता का इस्तेमाल करते हैं क्योंकि एक कथित समाज के नियमों के भीतर वे सर्वश्रेष्ठ स्थिति में होते हैं। इसी प्रकार, फ्रेंच विद्वान् बुअरड्यू उन सामाजिक समूहों की पहचान के लिए जो केवल इस कारण समाज में अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान पाते हैं क्योंकि उनके पास उनके व्यवहार और रुचि के अनुसार प्रतीकात्मक पूँजी होती है, प्रतीकात्मक पूँजी और उपाधि शब्द इस्तेमाल करते हैं। सामाजिक पूँजी की धारणा पर भी कुछ इसी प्रकार की अत्युक्तियाँ हैं। इससे यह पता चलता है कि कुछ समूहों के पास सामाजिक रिश्ते बनाने की अधिक क्षमता तथा दूसरे के साथ जुड़ने की अधिक योग्यता होती है। वे इस बात के सूचक हैं कि विशुद्ध आर्थिक और राजनीतिक कुलीनतंत्र की तुलना में प्रतिष्ठा, समाज और प्रास्थिति के मतभेद स्तरीकरण की कुछ व्यवस्थाओं में वर्चस्व भूमिका निभा रहे होते हैं।

5.3 भारत में जातीय असमानता का स्वरूप

जाति सर्वाधिक विवादग्रस्त मुद्दा है जिसने उन विद्वानों जो भारत में स्तरीकृत सामाजिक तंत्र की इस व्यवस्था का अध्ययन करने के इच्छुक हैं, को आकर्षित करता है और उनमें मतभेद पैदा करता है। इस मुद्दे पर अकादमी लेखन और राजनीतिक विवादास्पद लेखन का एक विशाल निकाय है। उपनिवेशवाद के प्रभाव और उसकी प्रशासनिक व्यवस्था के अधीन भारतीय समाज के रूपान्तरण पर मूलतः ये बहस का अंग हैं। कुछ लोग जाति सहित उपनिवेश पूर्व सामाजिक संरचना की निरन्तरता के लिए तर्क देते हैं। दूसरे लोग उपनिवेशी शासकों द्वारा लागू किए गए मौलिक गुणात्मक परिवर्तनों पर बल देते हैं।

जाति पर एक प्रसिद्ध पुस्तक 'होमो होमोहाइरारकीकस' के फ्रेंच विद्वान् और लेखक लुइस डुमंट ने जाति की एक मूलपाठ विषयक यथासूचित प्रतिभा का निष्पादन किया। इस प्रतिभा में, शुद्धता और प्रदूषण के दो विरोधाभासी धारणात्मक वर्ग जाति-प्रथा के मूल घटक हैं। डुमंट के अनुसार, जाति प्रथा के ये अपूर्व मूल सिद्धांत, सभी हिन्दु परिवारों के वेद विहित सूत्रीकरण और दैनिक जीवन में महसूस किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, ये मूल्य भारतीयों को सांस्कृतिक रूप से पाश्चात्य सभ्यता से अलग करते हैं तथा भारत को एक स्थिर, अपरिवर्तनीय, 'पूर्व देशीय' ब्राह्मणवादी मूल्यों का देश बनाते हैं। जाति की इस धारणा को निकालस डर्क्स तथा अन्यो द्वारा चुनौती दी गई है। डुमंट की धारणा की आलोचना की गई थी क्योंकि यह परम्परागत भारतीय समाज के अन्दर भी सामाजिक परिवर्तन, गतिशीलता और व्यष्टिगत अभावों को समझाने में विफल रही। जेराल्ड बेरेमन का संकेत था कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के सिद्धांतों

का सभी हिन्दुओं द्वारा समान रूप से अनुसरण नहीं किया गया था उसने ड्योन्सियन धारणा की भी आलोचना की कि सत्ता और आर्थिक घटक भिन्न हैं और जाति के उपोत्पाद हैं। अन्यो द्वारा भी बताया गया था कि जाति तंत्र कोई नियत तंत्र नहीं है अपितु यह संदर्भ-विशिष्ट और तरल है तथा विभिन्न जातियों से इसका संघर्ष बना रहता है। निकोल्स डर्क्स यह प्रदर्शित करने के लिए मानव जाति सम्बन्धी और मूल विषयक प्रभाव देता है कि ब्राह्मण और उनके मूलपाठ भारतीय जीवन के सामाजिक संरचना के केन्द्र में नहीं हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, सत्ता सम्बन्ध तथा मानव और संसाधनों के ऊपर नियंत्रण अधिक महत्त्वपूर्ण थे। परम्परागत भारत का जाति आधारित वेदसम्मत अथवा ब्राह्मणवादी नमूना, इस दृष्टिकोण के अनुसार, ब्रिटिश प्राच्यभाषाविदों और मानव जाति वैज्ञानिकों का एक आविष्कार था। तथापि, जाति ने भारतीय समाज सुधारकों और राष्ट्रवादियों के जाति बोध में एक निर्णायक भूमिका निभाई।

5.4 जाति : उपनिवेशी आधुनिकता का आविष्कार अथवा ब्राह्मणवादी परम्पराओं की गाथा

जैसा कि हमने ऊपर संकेत दिया है, दो विरोधी विचारधाराएँ जाति को भिन्न रूप में देखती हैं। कुछ के विचार से यह भारत की ब्राह्मणवादी परम्पराओं का एक अपरिवर्तन अवशेष है। इस विचार के अनुसार, ब्राह्मणवाद प्रमुख सभ्यता के मूल्य का द्योतक है और जाति इस मूल्य का केंद्रीय प्रतीक है। यह भारत की पूर्व-उपनिवेशी परम्पराओं की मूल अभिव्यक्ति है। इस विचार के प्रतिकूल, निकालस डर्क्स ने अपने कास्ट्स आफ माइण्ड (2001) में, तर्क दिया है कि जाति उपनिवेशी आधुनिकता का उत्पादन है। इससे उसका यह मतलब नहीं है कि जाति ब्रिटिश के आगमन से पहले विद्यमान नहीं थी। उसका एक सामान्य सा रुझान है कि ब्रिटिश शासन में सूचकांक थी। आरंभ में भारत में सामाजिक पहचान और समुदाय के विभिन्न रूप थे। अंग्रेजों ने सबको स्थानापन्न करके जाति का एकमात्र व्याख्यात्मक वर्ग बना दिया। यह उपनिवेशी राज्य था और इसके प्रशासकों ने जाति को एक एकरूप, सबको समाविष्ट करने वाला तथा सैद्धान्तिक तौर पर अविरोधी अंग बना दिया। उन्होंने जाति को सभी समस्याओं का एक उपाय तथा परम्पराओं का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक बनाया। उपनिवेशवाद से सांस्कृतिक स्वरूप और जाति जैसे सामाजिक नियमों का पुनर्गठन किया जिससे आधुनिक यूरोपियन और उपनिवेशित एशियाई प्रजाओं के रूप में उनके बीच मतभेदों और सीमा निर्धारण की रेखा खींची जा सके। दूसरे शब्दों में ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारतीय 'परम्परा' की पहचान और पुनरुत्थान दोनों में निर्णायक भूमिका निभाई। उपनिवेशी आधुनिकता ने तथाकथित भारतीय परम्पराओं का मूल्य कम कर दिया। साथ-साथ इसने उनका रूपान्तरण भी किया। जाति को भारत में आत्मिक सार के रूप में पुनर्स्थापित किया गया जिसने निजी क्षेत्र का विनियमन किया और उसकी मध्यस्थता की। जातिआरूढ़ भारतीय समाज यूरोपियन अस्तैनिक समाज से भिन्न था क्योंकि जाति ने व्यष्टिवाद के मूलभूत दायरे तथा राष्ट्र की सामूहिक पहचान का विरोध किया। इस उपनिवेश पूर्व पहचान और वफादारी बोध का प्रमुख लक्षण उपनिवेशी आधुनिक प्रशासकों द्वारा शासन को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए आसानी से प्रयोग किया जा सकता था। अतः डर्क्स के अनुसार, यह भारत में उपनिवेशी शासन था जिसने जाति के संदर्भ में "सामाजिक भेदभाव व श्रद्धा" को अकेले ही संगठित किया।

ब्राह्मणों और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को नीचा दिखाने अथवा बर्खास्त करने के प्रयास सुपरिचित ऐतिहासिक अभिलेखों और समसामयिक भारतीय सामाजिक जीवन में भी जाति परिचय की दृढ़ता के अनुसार नहीं है। जाति बन्धन और नियम निश्चित रूप से उपनिवेशवाद से पहले की अवधियों में सार्वभौमिक प्रयोग में नहीं थे। जाति अपने विभिन्न प्रदर्शनों और स्वरूपों में एक अपरिवर्त्य हस्ती नहीं थी। तथापि, वेद, महाकाव्यों, मनुस्मृति और अन्य कर्मशास्त्रों, पुराणों तथा कर्मकाण्डी प्रथाओं, पेशवा शासकों को अपराधियों के आधार पर दंड देते थे, की दंड व्यवस्था से लेकर सभी कालों में ब्राह्मणवादी 'सुधारकों' के विरोधियों की निन्दा किए जाने तक प्रत्येक घटना उपनिवेशवाद से पूर्व के काल की गाथा की ओर इशारा करती है। यह सत्य है कि उस समय गैर-जाति संगठन और हस्तियाँ भी थीं जैसे उपनिवेशवाद से पूर्व के काल में वैवाहिक गठबंधनों, व्यापार, वाणिज्य और राज्य सेवाओं से जुड़ी हुई व्यवस्था के नेटवर्क। तथापि, जाति पहचान और प्रचलित सामाजिक रूपक की लाक्षणिक विशेषता भी थी। जाति ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीयों को नीचा दिखाने अथवा अधीनस्थ बनाने के लिए मात्र अभिकल्पित ताना-बाना नहीं थी। इसने ब्राह्मणवादी 'निरंकुशता' की निन्दा करके उपनिवेशी हितों को पूरा किया, उपनिवेशी प्रशासन आसानी से उनके दलित लोगों को 'सभ्य बनाने' और उनका 'सुधार करने के लिए' अपने संकेतीकरण को न्यायोचित ठहरा सकता था। तथापि, जाति व्यवस्था को मजबूत करना अराजकता के प्रति एक विशाल कार्य के रूप में हो सकता था।

5.5 भारत में वर्ग असमानता का स्वरूप

वर्ग समाजों की समाज के स्तरीय में क्षैतिज विभाजन से पहचान होती है। मार्क्सवादियों के शब्दों में, वर्ग उत्पादन के साधन तक अपनी अन्तरआश्रयी पहुँच द्वारा परिभाषित होते हैं। अभिभावी वर्ग उत्पादन के साधन पर अपने नियंत्रण के माध्यम से अन्य वर्गों द्वारा पैदा किए 'फालतू' सामान का विनियोग/व्यय करते हैं और इस प्रकार उनका शोषण करते हैं। सामाजिक वर्गों की वास्तविक संरचना एक समाज से दूसरे समाज तक बदलती रहती है। भारतीय सामाजिक वर्गों का उत्थान और विकास सहज रूप से उपनिवेशवाद के मूल ढाँचे से जुड़ा हुआ था और उसके ऊपर इस संगठन की छाप थी।

शहरी क्षेत्रों में अभिभावी स्वामित्व वर्ग जिससे बनता है उसे उसके संयोजन में बाहुल्यता अथवा विजातीयता से अंकित किया गया है। वाणिज्यिक, औद्योगिक अथवा वित्तीय पूँजी के आधार पर सुस्पष्ट वर्गीकरण भारत के मामले में संभव नहीं है। भारतीय कारोबारी वर्ग जटिल अन्तर्ग्रथित कार्यों का प्रदर्शन करता है। उपनिवेशी शासन के अन्तर्गत एक कारोबारी आदमी आरंभ में छोटे निजी व्यापार, धन उधारी के काम में लगता था अथवा विदेशी ब्रिटिश राज्य के एजेण्ट के रूप में कार्य करते थे। ब्रिटिश पूँजीवादी और वाणिज्यिक विशाल संयुक्त उद्यम कम्पनियों, प्रबन्धन ग हों, बैंकिंग और बीमा तथा प्रमुख आयात-निर्यात करने वाली फर्मों के प्रतिनिधित्व में भारतीय अर्थव्यवस्था के उच्च स्तर पर नियंत्रण रखता था। बाधाओं और रुकावटों के बावजूद, भारतीय पूँजीवादी वर्ग धीरे-धीरे और स्थिर गति से आगे बढ़ा और उसने सफेदपोशों के 'सामूहिक एकाधिकार' का उल्लंघन किया। चूँकि, सभी संरचनात्मक बाधाओं के रहते हुए उपनिवेशवाद में भी निजी सम्पत्ति की सुरक्षा, संविदा की पवित्रता, बाजारोन्मुख विकास के लिए अपेक्षित मूलभूत विधिक संघटक अभिनिश्चित थे। विदेशी व्यापार और वाणिज्यीकरण ने पूँजी कमी को आसान कर दिया और उन क्षेत्रों के विकास को गतिशीलता प्रदान की जहाँ पर कच्चे माल की लागत कम थी जैसे कपड़ा, वस्त्र, चीनी, चमड़ा, सीमेंट, तम्बाकू और इस्पात। पारसी, मारवाड़ी,

खोज, भाटिया और गुजराती व्यापारियों के कुछ समूहों ने यूरोपियन कम्पनियों के साथ सहयोग से लाभ कमाया और अपने संसाधनों को विनिर्माण क्षेत्रों में लगाया। इस भारतीय पूँजीवादी वर्ग ने विकास किया, कुछ सीमा तक विविधता प्राप्त की और 1940 के दशक तक महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त की। 'लोक क्षेत्र' यूनिटों ने इस 'संरक्षित' वर्ग को अवस्थापना, अन्तर्वर्ती और पूँजीगत माल मुहैया कराया जबकि सार्वजनिक ऋण कम्पनियों ने इसके लिए वित्तपोषण के सस्ते साधन उपलब्ध कराए। बड़े-बड़े 20 औद्योगिक ग हों की परिसम्पत्तियाँ 1851 में 500 करोड़ रुपये से बढ़कर 1986 में 23,200 करोड़ की गई। यह राज्य द्वारा विकसित अवस्थापन प्रसुविधाओं से प्राप्त लाभ, कम मूल्य वाले ऊर्जा निवेश, सस्ता पूँजीगत माल तथा बड़े एकाधिकार वाले औद्योगिक घरानों द्वारा योजना के तहत इनको उपलब्ध कराये गए दीर्घावधि वित्त-पोषण का परिणाम था। दूसरी ओर, लगभग 70 प्रतिशत भारतीय लोग मात्र आजीविका स्तर पर गुजारा करते हैं और 7.66 करोड़ कृषिक मजदूर उस आय का मात्र एक दसवाँ हिस्सा अर्जित करते हैं जितना शहरों में संगठित क्षेत्र के कार्यकर्ता कमाते हैं। 1980 के दशक में बेरोज़गारी कुल कार्यरत जनसंख्या का 10 प्रतिशत थी। शहरी केन्द्रों में अधिकांश मजदूर असंगठित अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं : फेरी लगाने वालों, घरेलू नौकरों, द्वारपालों और पटरी विक्रेताओं की विशाल सेना एक प्रकार की प्रछन्न शहरी बेरोज़गारी की द्योतक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ग-संगठन पर भी उपनिवेशवाद की छाप है। ग्रामीण अमीर लोगों का पुराना समूह, यद्यपि ब्रिटिश उपनिवेशवादी राज्य ने जिसे कमज़ोर बना दिया था मौजूद रहा। यह समूह जमींदारों के उस वर्ग में परिवर्तित हो गया जिन्होंने भूमि में सम्पत्ति के नए अधिकारों के साथ निवेश किया। यह विशेष रूप से स्थायी तौर पर आवासित बंगाल के जमींदारी क्षेत्रों और अवध के तालुकदारी क्षेत्रों के लिए सत्य था। यह वार्षिकीजीवी जमींदारों का वर्ग आमतौर पर उन जमींदारों और तालुकदारों के पहले विद्यमान समूहों से प्रकट हुआ था जो ब्रिटिश शासन से पहले राजस्व संग्रहण के अधिकार प्राप्त थे। वे अपने छोटे सीमांतक सभी-किसानों के ऊपर 'अतिरिक्त आर्थिक' संघीय शासन तंत्र कायम रखते थे। चूँकि कांग्रेस ने आजादी के बाद शनैः शनैः सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए सैन्यीकरण स्वरूप की बजाए नौकरशाही का पक्ष लिया, इन अर्द्धसंघीय क्षेत्रिक प्रभावशाली व्यक्तियों की शक्ति और विशेषाधिकार कुछ क्षेत्रों में अछूते रहे। इन वर्गों ने अब नई लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रबन्ध किया। क्षेत्रीय सुधारों को पूरी तरह लागू करने में विफलता का तात्पर्य था कि नई राज्य व्यवस्था में सामाजिक तौर पर सीमांतक समूहों को संसाधनों की उपलब्धता तथा उनकी समष्टि तक पहुँच सीमित रही।

तथापि, धनी किसान गिनती के तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक महत्वपूर्ण स्वामित्व वाला वर्ग है। बंगाल के जमींदारी आवासित क्षेत्रों से बाहर क्षेत्रों में, उपनिवेशी राज्य ने प्रमुख पैदावारी समूह के साथ भू-राजस्व का निपटारा किया। इन समूहों से एक अमीर किसानों का वर्ग अस्तित्व में आया। उन्होंने उपनिवेशी अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुए बाज़ार का लाभ उठाया और उनके पास पर्याप्त कृषियोग्य भूमि, पशु, आवश्यक उपकरण जैसे संसाधन थे तथा वे बेहतर तरीके से उधार ले सकते थे। वे साहूकारों पर भी कम निर्भर थे और वे स्वयं सूदखोरी करने लगे। पंजाब और ऊपरी दोआब के किसानों, तमिलनाडु में वैलाहों, दक्षिण गुजरात में कन्वी पट्टीदारों, कर्नाटक के लिंगायतों तथा आन्ध्रप्रदेश के कामा-रेडी किसानों से मिलकर इस समूह का गठन हुआ। उपनिवेशवाद के दौरान और आजादी के बाद किराया कानून से भूमिगत संसाधनों गैर-खेतिहर और दूरस्थ जमींदारों से उद्यमी सम बद्ध किसानों को अंतरण की प्रक्रिया आरंभ हो गई। कुछ वार्षिकीजीवी जमींदारों के पुराने समूह ने स्वयं को भी इसी वर्ग में परिवर्तित

कर लिया। इस वर्ग को राजनीतिक संरक्षण में वृद्धि हुई क्योंकि इसे कृषि उत्पादों को समर्थन मूल्य मुहैया कराने की राज्य की नीति और आर्थिक सहायता प्राप्त निवेशों जैसे पानी, बिजली, उर्वरक, डीजल, क्रेडिट एवं कृषि मशीनरी के उदारवादी प्रावधानों से प्रोत्साहन मिला। इस वर्ग की भूमि और अन्य कृषिक संसाधनों के स्वामित्व के कारण आसानी से पहचान की जा सकती है। 1970 के दशक में समृद्ध किसानों के 20 प्रतिशत परिवारों का ग्रामीण परिसम्पत्तियों जैसे भूमि, पशु भवन और उपकरण आदि के लगभग 63 प्रतिशत पर अधिकार था। ग्रामीण परिसम्पत्तियों पर इस असमानुपाती पहुँच से श्रमिक मजदूरों पर उनका नियंत्रण होता है जिसे इस वर्ग द्वारा काफी बड़ी संख्या में व्यापारयोग्य फालतू सामान पैदा करने के लिए प्रयोग किया जाता है। कृषिक मजदूर ऐसा दबदबे वाला समूह है जिनके पास छोटा-मोटा काम धंधा है अथवा जिन्हें नियमित रोज़गार की अभिनिश्चितता नहीं है और धनी किसानों के निग्रही वर्चस्व से प्रायः दबे रहते हैं।

भारत में नौकरशाही-प्रबन्धन कार्यो में चुनिन्दा लोगों का भी एक महत्वपूर्ण वर्ग है क्योंकि भारत की आज़ादी के समय अपेक्षाकृत कमजोर पूँजीवादी वर्ग ऐसी स्थिति में नहीं था जो उत्कृष्ट रूप से विकसित प्रशासनिक राज्य उपस्कर को पूरी तरह अपने अधीन कर सके। ग़ैर-बाज़ारी साधनों के विकास और संसाधन और आर्थिक संरक्षण के आबंटन में नियोजन के कारण भी नौकरशाही का विस्तार हुआ। उपनिवेशवाद के अनुवर्ती काल में इस वर्ग का विस्तार हुआ जिससे शिक्षा का प्रसार हुआ तथा पेशेवर और बाबूगीरी वाले कार्यो की आवश्यकता पड़ी जिनके लिए नई योग्यता और कुशलता की जरूरत थी। यह मध्यवर्गीय लोगों का मात्र एक सहायक वर्ग है क्योंकि लोक क्षेत्र पेशेवर और निजी पूँजी वाले लोगों के बीच हितों का संघर्ष है। ज्ञान, योग्यता, रुचियाँ और रिश्तों का जाल इस वर्ग के महत्वपूर्ण लक्षण हैं।

5.6 जाति और वर्ग शासन तंत्र के अन्तर्सम्बन्ध

जाति और वर्ग असमानता तथा कुलीनतंत्र की ओर इशारा करते हैं। तथापि दोनों मसलों में, संगठन के सिद्धांत अलग-अलग हैं। जाति के मुख्य लक्षण हैं : सगोत्रीय अथवा सजातीय विवाह, व्यवसायगत मतभेद तथा व्यवसायों का वंशानुगत विशिष्टीकरण, प्रदूषण की धारणा एवं धार्मिक व्यवस्था जिसमें सामान्यतः ब्राह्मण उत्कृष्ट स्थिति में हैं। दूसरी तरफ वर्ग व्यापक रूप से स्वामित्व के आर्थिक आधार अथवा उत्पादन के साधनों पर ग़ैर-स्वामित्व का हवाला देते हैं। परन्तु जाति और वर्ग एक-दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हैं? वर्ग स्वामित्व के प्रकार और आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण तथा उत्पादन की प्रक्रियाएँ की जानी वाली सेवाओं के प्रकार के आधार पर उपवर्गों में बाँटे जाते हैं। जाति की ब्राह्मणवादी धार्मिक व्यवस्था भी सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं है और न सब इसका समर्थन करते हैं। कई मामलों में, धार्मिक व्यवस्था मात्र प्रासंगिक है। उत्तर भारत में समृद्ध जाट बिना किसी समतुल्य धार्मिक प्रास्थिति के सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व का लाभ लेते हैं। अधिकांश लोकप्रिय जाति समर्पणों में, मात्र कुलीन तंत्र पर बल दिया जाता है और वह भी ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण के कारण। तथापि, कभी-कभी जाति एक निश्चित समुदाय के रूप में कार्य करती है तथा समाज के अन्य वर्गों से कोई धार्मिक सम्बन्ध नहीं रखती। हमारे धारणागत वर्ग हमेशा विद्यमान सामाजिक वास्तविकता को पुनर्ग्रहण नहीं करते। उदाहरण के तौर पर, खेतिहर और कृषिक मजदूरों के बीच एक धारणागत अंतर बना रहता है। तथापि, वास्तविक जीवन में, अतिव्याप्त स्थिति बनी रहती है तथा वे निश्चित हस्तियों का गठन नहीं करती हैं। वार्षिकीजीवी

जमींदारों और खेतिहर-मालिक वर्गों के बीच समान अतिव्याप्ति पाई जाती हैं। यह तस्वीर उस समय धुंधली हो जाती है जब हम जाति-वर्ग विरूपण की बात करते हैं।

जाति और वर्ग कतिपय मामलों में समान तथा कुछ अन्य मामलों में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। जातियाँ प्रास्थिति समूहों और समुदायों का गठन करती हैं जो सम्पत्ति, व्यवसाय और जीवनशैली के स्वामित्व के संदर्भ में परिभाषित किए जा सकते हैं। सामाजिक सम्मान इस संवत्त व्यवस्था में धार्मिक अनुष्ठान मूल्यों से निकट से जुड़ा होता है। वर्ग स्थिति भी सामाजिक सम्मान से जुड़ी होती है तथापि, वे उत्पादन के साधनों के स्वामित्व अपना गैर-स्वामित्व के संदर्भ में अधिक परिभाषित हैं। वर्ग अपेक्षाकृत अधिक मुक्त तथा सरल होते हैं और उनमें व्यष्टि के ऊर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता की अधिक गुंजाइश होती है। जाति प्रथा में मात्र एक पूरा वर्ग ऊर्ध्वमुखी गति कर सकता है और इस प्रकार, गतिशीलता अपेक्षाकृत कम है।

यद्यपि जाति और वर्ग व्यवस्था के बीच काफी विविधता है, वर्ग व्यवस्था में उच्च और निम्न वर्ग जाति संरचना में व्यापक रूप से समाहित हैं। उच्च जाति का उत्पादन के साधनों (ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि) पर अधिकार होता है और वे वार्षिकीजीवी की तरह कार्य करते हैं। भूमिहीन कृषिक श्रमजीवी निम्नजातियों और दलितों से मेल खाते हैं जो वार्षिकीजीवी उच्च जाति के लोगों और अनावर्ती स्तर के धनी समृद्ध किसानों को श्रम सेवा मुहैया कराते हैं। अन्तरवर्ती स्तर पर वर्ग पहचान की सुस्पष्टता अधिक जटिल है। समुदायों के विभेदन की प्रक्रिया जाति संरचना से वर्ग सम्बन्धों को अलग करती है। यदि जाति और वर्ग उत्कृष्ट और निम्न स्थिति पर अतिव्याप्त होते हैं तथा कुछ मामलों में लगभग एक ही बिन्दु पर मिलते हुए प्रतीत होते हैं, वहाँ जाति व्यवस्था के अन्तरवर्ती स्तर पर यह तस्वीर बिल्कुल अस्पष्ट है। इसी प्रकार, आधुनिकीकरण, विशेष रूप से शहरीकरण शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रियाएँ और नई योग्यताएँ विस्थापन बलों के रूप में कार्य करती हैं जिससे सामाजिक जड़त्व के बलों में सुराग बनता है और जाति की दृढ़ता में आशोधन होता है।

5.7 सामाजिक असमानताएँ, विकास और सहभागिता राजनीति

यदि सामाजिक असमानताएँ अत्यधिक गहराई तक से विद्यमान हो तब वे एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकास प्रक्रिया और समाज के अभावग्रस्त वर्ग की सहभागिता को कैसे प्रभावित करती है। इस मूल प्रश्न का उत्तर कई तरीके से दिया गया है। कोठारी ने जाति का राजनीति में तथा राजनीति का जाति में दखलंदाजी का विश्लेषण करते समय, आजादी के बाद राजनीति आधुनिकीकरण की प्रगति को तीन स्थितियों में बाँटा है। पहली स्थिति में उसका कहना है कि राजनीतिक सत्ता संघर्ष समृद्ध और उदीयमान जातियों तक सीमित था। दूसरे चरण में, निम्न जातियों में गतिशीलता आई है तथा वे स्वयं राजनीतिक क्षेत्र में पहुँच रहे हैं। उसके शब्दों में, “राजनीति जाति से प्रभावित नहीं है बल्कि जाति का राजनीतिकरण हो रहा है। उपनिवेश के बाद भारत में मताधिकार का विस्तार होने के बाद, प्रत्येक सामाजिक समूह और उप-समूह विकास प्रक्रिया में भाग लेने के लिए गतिशील हुआ है तथा राज्य नौकरशाही में जगह बनाने के लिए मुकाबले में है। इस प्रकार भारतीय राज्यतंत्र अभिभावी जातियों द्वारा नियंत्रित है। राजनीतिक दल भारत जैसे विकासशील समाज में विद्यमान विघटन को बढ़ावा दे रहे हैं। रिश्ते, जाति और समुदाय के आदिकालीन गठबंधनों की प्रमुखता असैनिक समाज की स्थापना में अड़चन डालने में महत्वपूर्ण

भूमिका निभा रही है। तथापि, गतिशीलता और राजनीतिक आधुनिकीकरण का कोई निश्चित क्रम नहीं है, विशेष रूप से निश्चित पथ के साथ-साथ कोई पूर्वनिर्धारित और बिना शर्त प्रगति कभी नहीं हुई है। ग्रामीण दूर दराज के इलाकों में जाति और समुदाय के बीच दरार तथा सगोत्रीय और विवाहजन्य सम्बन्ध के बीच जोड़-तोड़ पुनर्आबंटनीय भूमि सुधारों के कार्यान्वयन के प्रति कार्य करते हैं। धनी समृद्ध किसान विद्यमान सामाजिक संरचना का उपयोग चुनावी दंगल में बहुवर्गीय खेतिहरों की क्रियाशीलता बनाने तथा सीमांतक और छोटे किसानों को उनके अपने आर्थिक हितों – जैसे कृषि उत्पादों के लिए कम कर; जंगल, अधिक मूल्य, बेहतर आर्थिक सहायता तथा सस्ती दर पर सुविधाएँ – के लिए उन्हें गतिशील बनाने और सुसज्जित करने में करते हैं।

इस प्रकार, उपनिवेशवाद के उत्तरवर्ती भारतीय राज्य के समतावादी आदर्श के बावजूद अभी भी विभिन्न सामाजिक वर्गों और जातियों के बीच संसाधनों, सत्ता और हकदारी तक पहुँच समानुपात में नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च और निम्न जातियों के बीच रिश्ते जाति के सिद्धांतवाद से नियंत्रित होते हैं। एंड्रू बेटेली के अनुसार उपनिवेशवाद के उत्तरवर्ती भारतीय समाज में आधुनिक सेवा क्षेत्र के पेशेवरीकरण और विशिष्टीकरण ने औपचारिक शिक्षा, तकनीकी कुशलता और प्रशिक्षण की भूमिका में वृद्धि की है, 'परिवार', जाति नहीं, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में असमानता के सामाजिक रूप से पुनः प्रतिष्ठापन में निर्णायक भूमिका निभा रहे हैं। तथापि, अभी भी यह विवाद का मुद्दा है कि क्या प्रति क्षेत्र में पेशेवर क्रियाकलापों की नौकरशाही में वृद्धि से सामाजिक गतिशीलता और अवसरों, प्रास्थितियों और सत्ता का असमान वितरण उस सामाजिक और राजनीतिक पद का अवनिर्धारण करते हैं जो व्यष्टियों को प्रतिष्ठित स्थिति, रैंक तथा शक्ति प्रदान करता है।

औपचारिक लोकतंत्र की स्थापना अपने आप में यह अभिनिश्चित नहीं करती है कि सभी नागरिक राजनीतिक प्रक्रियाओं में समान पहुँच और सहभागिता का लाभ ले सकेंगे। राजनीतिक विशेषाधिकार कई गैर चयनित संस्थाओं, असैनिक नौकरशाही और विशेषकर पुलिस में प्रतिधारित और गहरे रंग में रंगे होते हैं। वे प्रबल स्वामित्व वाले वर्गों और ऊँची जाति वालों के हितों का संरक्षण करते हैं। नीची जातियाँ अपना वर्ग राजनीतिक प्रक्रियाओं अथवा राज्य की सामाजिक और आर्थिक नीतियों को आकार देने तथा उनका आकार बदलने में अभी पर्याप्त रूप से शक्ति सम्पन्न नहीं है। देहात में ऊँची जातियों के शक्तिशाली प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा शहरी क्षेत्रों में औद्योगिक और कारोबारी वर्गों के अमीर लोग राज्य व्यवस्था में लोकतंत्रीकरण से इंकार करने के लिए गैर-चयनित संस्थाओं में अन्तर्निहित आधिकारिक धार का प्रयोग करते हैं। अपने अधिकारों का प्रत्यक्ष दावे और पिछड़ी हुई और अनुसूचित जातियों द्वारा क्षमताओं की गतिशीलता को धूर्त राजनेताओं द्वारा अपनी सत्ता और धन को बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की गतिशीलता से समान विकास और सामाजिक सशक्तीकरण के कार्यक्रम को नया रूप देने की बजाएँ एक बिगड़ी हुई व्यवस्था और पूर्णतः भ्रष्ट और अदक्ष नौकरशाही के हितों को पूरा किया जाता है। अन्य संस्थागत व्यवधानों के अलावा, पर्याप्त लोकतांत्रिक अधिकारों को मंजूरी देने तथा पुनःआबंटनीय न्याय की वचनबद्धता को निर्मुक्त करने में विफलता भारत में वर्ग और वर्ग आधारित असमानताओं में पिरोई हुई है। ड्रेज ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में अलाभकृत समूहों की स्कूल, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच के संदर्भ में अभावग्रस्तता के अनेक प्रकार के प्रमाण तथा जनसंख्या के सीमांतक वर्गों का राजनीतिक प्रक्रियाओं में प्रभावी सहभागिता से बहिष्कार देखे।

5.8 सारांश

भारत के उपनिवेशवाद के उत्तरवर्ती राज्य ने अपने शासन में समानता और सामाजिक न्याय के औपचारिक सिद्धांतों को स्वीकार किया। तथापि, अन्तरिक्ष में कोई सामाजिक अस्तित्व मौजूद नहीं है। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था की कार्य प्रणाली जाति और वर्ग आधारित असमानताओं से गहन रूप से और अनुचित तरीकों से प्रभावित होती है। राज्य में विशेष रूप से गैर-चयनित संस्थाओं जैसे न्यायपालिका, पुलिस और नौकरशाही जो उपनिवेशवाद काल से चली आ रही है, शक्तियों का समग्र संतुलन प्रमुख स्वामित्व वाले वर्गों और ऊँची जातियों के वर्चस्व तथा प्रभाव में है। राजनीतिक और लोक क्षेत्र गरीबों और नीची जातियों की शक्ति सम्पन्नता को बहुत कम गुंजाइश छोड़ते हैं। ग्रामीण गरीबों के प्रति हिंसा, विशेषकर नीची जातियों की औरतों और जगह-जगह फँसी हुई गन्दी बस्तियों की अस्वास्थ्यकर हालातों में जी रहे लोगों की पीड़ा सांख्यिकीय आँकड़ों की पकड़ में नहीं आ सकती है। जबकि अमीर और शक्तिशाली व्यक्ति विकास प्रक्रियाओं और राज्य द्वारा संसाधनों के आबंटन के विधिसम्मत और गैर कानूनी फलों को प्राप्त करते हैं, अलाभग्रस्त वे लोग हैं जो अभावग्रस्तता तथा विभेदन दोनों के नंगेपन और सूक्ष्म स्वरूप से पीड़ित हैं।

5.9 अभ्यास

- 1) ओहदेदार समाज और वर्ग समाज में आप क्या अन्तर करेंगे?
- 2) क्या जाति उपनिवेशी आधुनिकता का आविष्कार थी अथवा भारतीय विगत की गाथा, स्पष्ट करें।
- 3) सामाजिक असमानता हमारे राज्य तंत्र तथा विकास नीतियों को किस प्रकार प्रभावित करती है?